मगसिर शुक्ल ५, बुधवार, दिनांक १८-१२-१९७४, श्लोक-३-४, प्रवचन-८

....चलता है। यह आत्मा तथा शरीर और कर्म ये भिन्न चीज़ है। आत्मा तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। यह शरीर तो जड़स्वरूप है। यह तो मिट्टी है। अन्दर कर्म है, वह भी एक जड़स्वरूप है। तो दोनों के लक्षण भिन्न हैं। जिसे आत्मा प्राप्त करना है अर्थात् जिसे धर्म करना है, उसे आत्मा के ज्ञानलक्षण द्वारा आत्मा को जानना पड़ेगा। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप का ज्ञान करने, उसका लक्षण जानना और देखना ऐसे लक्षण—चिह्न—निशान से आत्मा जाना जा सकता है। उससे आत्मा को सम्यग्दर्शन की पहली धर्मदशा प्रगट होती है, इसलिए कर्म और शरीर से भिन्न चीज़ है।

अब **अन्तरङ्ग राग-द्वेषादि विकारीपरिणाम भी....** थोड़ा चला है, थोड़ा बाकी है। सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तरंग में जो कुछ दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प उठे, वह राग है। और प्रतिकूलता सहन न हो, तब इसे द्वेष होता है। यह राग-द्वेष, विषयवासना या शुभ-अशुभभाव, वे सब विकारी परिणाम हैं। **भी वास्तव में आत्मा के ज्ञानलक्षण से भिन्न हैं,....** भगवान आत्मा ज्ञान लक्षण से लक्षित (होता है), तब वह पुण्य और पाप के भाव, शुभ और अशुभभाव वह क्षणिक और आकुलता के लक्षण से ज्ञात हों, ऐसे हैं। आहाहा! समझ में आया? है?

क्योंकि राग-द्वेषादिभाव.... आहाहा! चाहे तो भगवान की भक्ति का भाव हो, भगवान के स्मरण का भाव हो या पर की दया पालने का भाव हो। पाल सकता नहीं। आहाहा! क्योंकि वह भिन्न चीज़ है, उसका आत्मा कुछ कर नहीं सकता। परन्तु उसकी दशा में जो दया का भाव, व्रत करूँ, अहिंसा, ब्रह्मचर्य पालन करूँ देह से—ऐसा जो भाव उठता है, वह भी एक राग है। वह विभावस्वभाव है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं। भारी सूक्ष्म बातें। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर तीर्थंकर भगवान ने तीन काल-तीन लोक देखे, उसमें यह चीज़ इस प्रकार से देखी। आहाहा!

कहते हैं कि यह प्रभु अन्दर आत्मा जो है, वह तो ज्ञान-दर्शन लक्षणों से ज्ञात हो ऐसी चीज़ है और शरीर और कर्म तो जड़ हैं। वे अचेतन लक्षण से ज्ञात हों, ऐसे हैं। वह

आत्मा की चीज़ नहीं। उसी प्रकार अन्दर पुण्य और पाप के भाव होते हैं। आहाहा! वे भी.... है? **राग-द्वेषादि भाव क्षणिक और आकुलता लक्षणवाले हैं;....** क्षणिक है कृत्रिम। रहे और जाये.... रहे और जाये.... होवे और जाये। आहाहा! प्रभु अन्दर आत्मा तो नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति है।

जिसे धर्म करना हो—जिस सुखी होना हो, जिसे सुख के पन्थ में जाना हो, तो उसे ज्ञान और दर्शन के लक्षणवाला प्रभु, उसे अनुभवना और पकड़ना पड़ेगा। कहो, पोपटभाई! यह पैसे से सुख नहीं, ऐसा कहते हैं। दुःखी होगा? पैसे से दुःखी नहीं। पैसे मेरे, मैंने कमाया, मैंने होशियारी की तो यह करोड़-दो करोड़ इकट्ठे हुए। ऐसा जो ममत्वभाव, वह दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह रागादि भाव, वे क्षणिक हैं और आकुलता अर्थात् दुःखरूप हैं। वे आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा!

जैसे यह शरीर और कर्म वह मिट्टी-जड़ और अजीव है, उसी प्रकार पुण्य और पाप के भाव में उसे जानने का स्वभाव नहीं, उसका उसे। राग में राग को जानने का स्वभाव नहीं; इसलिए वह तो क्षणिक और अचेतन और आकुलता के कारण हैं। आहाहा! तत्त्व बहुत सूक्ष्म। बाहर से जिसे देखना है, उसे तो यह मिले ऐसा नहीं है। भगवान तो अन्दर पड़ा है प्रभु। आहाहा! जानने-देखने के निशान से—चिह्न से यह आत्मा, ऐसा पकड़े तो उसे सम्यग्दर्शन होता है, आनन्द होता है, तो उसे धर्म होता है। आहाहा! बाकी कोई यह क्रियाकाण्ड करे, व्रत और भक्ति, पूजा और दान और दया, वह सब तो रागभाग क्षणिक और आकुलता के करनेवाले हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान की भक्ति?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? पहले तो यह कहा था। आज अभी कहा पहले। कहा था अभी पहले। भगवान की भक्ति भी राग है और आकुलता है। आहाहा! क्योंकि सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर पूर्ण परमात्मदशा प्राप्त (की) परन्तु वह द्रव्य से तो भिन्न चीज़ है न? और उस भिन्न चीज़ की भक्ति जब.... हो, वह सब राग है। आहाहा! समझ में आया? वह राग क्षणिक है। क्योंकि वह राग पलटकर और दूसरा व्यापार का राग आवे, व्यापार का राग पलटकर और कोई दया का भाव आवे। आहाहा! यह सब

विकल्प राग, वह क्षणिक है और आकुलता को उपजानेवाले हैं। प्रभु आत्मा का यह स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वह तो **क्षणिक और आकुलता....** यहाँ तक आया था कल। **वे स्व-पर को नहीं जानते;....** आहाहा! जो अन्दर विकल्प-राग उठता है, वह राग तो स्वयं क्या चीज़ है, ऐसा वह राग अपने को जानता नहीं तथा उस राग के साथ चैतन्य भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसे राग जानता नहीं। अरे! ऐसी बात लोगों को.... आहाहा! कहते हैं कि वह **स्व-पर को नहीं जानते;....** कुछ राग की वृत्ति जो उठी—दया की, दान की, व्रत करूँ, भक्ति करूँ, पूजा करूँ या पाँच-पच्चीस हजार का दान दूँ, ऐसा जो विकल्प है, वह राग का भाग है। वह राग नहीं जानता अपनी जाति को, वह राग नहीं जानता राग के समीप में रहे हुए भगवान ज्ञानस्वरूप को वह राग नहीं जानता। स्व-पर को जानता नहीं, कहा न? आहाहा! समझ में आया? यह धर्म की रीति कोई अलग है, बापू! आहाहा! दुनिया जो मानकर बैठी है और दुनिया को जो मिला है, वह सब बाहर की बातें मिली हैं। तत्त्व की बात नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मा त्रिलोकनाथ की वाणी में यह आया। भगवान! तू तो ज्ञान-दर्शन के लक्षण से-चिह्न से-निशान से ऐसा है आत्मा, ऐसा ज्ञात हो, ऐसा है न! वह राग से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। क्योंकि राग है, वह पर के लक्ष्य से हुई चीज़ है और राग अपने को जानता नहीं तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा साथ में है, उसे राग कहाँ से जाने? आहाहा! समझ में आया? इस प्रकार कैसा धर्म ऐसा? ऐसा वीतराग का धर्म ऐसा होगा? पहले तो ऐसा कहते, छह काय की दया पालना। भोगीभाई! क्या था वहाँ कुण्डला में? आहाहा! या तो किसी के दु:ख मिटाना या किसी को मदद करना। ऐसी सब बातों में जगत मानता था।

मुमुक्षु : इस पुण्य से धर्म होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य हो और उससे धर्म होगा। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। तू लुट गया है। यह राग की क्रिया, वह क्षणिक है और दु:खरूप और आकुलता है। उसे तू धर्म मान और उसे धर्म का कारण मान, मिथ्यात्वभाव में तू लुट गया है। समझ में आया?

स्व-पर को नहीं जानते; जबकि ज्ञानस्वभाव तो नित्य.... है प्रभु। जानना... जानना... जानना.... ऐसा जो गुण और स्वभाव, वह तो आत्मा का स्वभाव त्रिकाल है। समझ में आया? वह **शान्त है।** क्षणिक के सामने नित्य है और आकुलता के सामने शान्त है। आहाहा! ज्ञानस्वभाव जानना.... जानना.... जानना.... ऐसा जो स्वभाव, वह तो त्रिकाल है, नित्य है और वह तो शान्त है। आहाहा! ऐसे स्वभाव को जानने से तो शान्ति आवे—अकषायस्वभाव आवे, उसे शान्ति कहते हैं, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह **अनाकुल है,....** यह शान्ति की व्याख्या है। सुखरूप है, आनन्दरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा का स्वभाव नित्य है, आनन्द है, अर्थात् अनाकुल है।

स्व-पर को जानने का उसका स्वभाव है;.... भगवान आत्मा का स्वभाव स्व अर्थात् अपने को जानने का और राग, वह पर है, विकल्प आकुलता को पररूप से भी जानने का उसका स्वभाव है। आहाहा! भारी लोगों को, नये लोगों को तो ऐसा लगे। यह किस प्रकार का धर्म निकाला, कहते हैं। जैनधर्म ऐसा होगा? भगवान! जैनधर्म ही यह है। बापू! तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

यह राग की वृत्तियाँ जो उठती हैं, वे दुःखरूप हैं, आकुलता है। उसे छोड़कर परमात्मा स्वयं अपने ज्ञान-दर्शन से जाने तो उसे वहाँ शान्ति आवे, सम्यग्दर्शन अर्थात् सत् की प्रतीति आवे और स्वरूप में रमणता का आचरण आवे। आहाहा! उसे यहाँ जैनधर्म कहो या वस्तु का स्वभाव कहो। ऐसा कहते हैं। जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं। वह तो वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? क्योंकि जैन अर्थात् जीतना। किसे? कि उसके स्वभाव से विरुद्ध जो अज्ञान और राग-द्वेष को, उसे जीतना अर्थात् कैसे जीतना? कि वह पूर्णानन्द का नाथ स्वयं ज्ञान-दर्शन से ज्ञात हो ऐसी चीज़ है, उसे जानने से उसे आनन्द आता है और उसे राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होती, उसका नाम राग को जीतना कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? जैन अर्थात् कि आत्मा का स्वरूप ही ऐसा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! समझ में आया? आहाहा! हिन्दी भाषा आ जाती है। अभी तो सब गुजराती है। आहाहा!

आत्मा ज्ञानस्वभावी है और नित्य और शान्त और **स्व-पर को जानने का उसका स्वभाव है; इस प्रकार भिन्न लक्षण द्वारा....** आहाहा! दोनों के निशान-दोनों के लक्षण (अर्थात्) राग-द्वेष के, शरीर के, कर्म के और आत्मा के, दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया? यह तो कुछ दया, दान, व्रत, तप, अपवास करे तो आत्मा ज्ञात होगा। अरे! भगवान! यह तो सब वृत्तियों का विकल्प और राग है। राग तो आकुलता है। आकुलता द्वारा अनाकुल आत्मा ज्ञात हो? समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, वह यहाँ लिखा है। आहाहा! इन दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। **ज्ञानमय आत्मा, रागादि से भिन्न है—** आहाहा! **भिन्न लक्षण द्वारा (भगवान) ज्ञानमय आत्मा,....** और रागादि आकुलता से भिन्न है। आहाहा! वह ... तो ऐसा हो गया है न कि इसमें सब गोता खा गये हैं न? कि भगवान की ऐसी भक्ति करते हैं, त्रिलोकनाथ परमात्मा साक्षात् विराजते हों। महाविदेह में तो प्रभु विराजते हैं। सीमन्धरस्वामी भगवान त्रिलोकनाथ जीवन्तस्वामी, जीवन्त अरिहन्त हैं। सब चौबीस तीर्थंकर हुए, वे तो अरिहन्त थे तो अभी तो सिद्ध हो गये। वे तो सिद्धालय में गये—णमो सिद्धाणं। ये णमो अरिहन्ताणं में हैं। महाविदेह में भगवान विराजते हैं। है न यह समवसरण, देखो न! सामने समवसरण है, वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। समझ में आया? आहाहा! उन भगवान की वाणी में तो यह आया कि भाई! **भिन्न लक्षण द्वारा ज्ञानमय आत्मा,....** और भिन्न लक्षण द्वारा रागादिभाव, यह दो चीज़ तो भिन्न है। **ऐसा निश्चित होता है।** इसलिए.... नीचे श्लोक दिया है न!

छेदन करो जीव बन्ध का, तुम नियत निज निज चिह्नते
प्रज्ञा छैनी के छेद के, दोनों पृथक् हो जाये हैं।

यह कुन्दकुन्दाचार्य की भाषा-वाणी है। **जीव बन्ध दोनों,....** जीव ज्ञानानन्दस्वरूप और बन्ध रागादि स्वरूप। यह **नियत....** निश्चय। रागादि और आत्मा इनका निश्चय निज लक्षण—अपने लक्षण से वह राग और आत्मा दोनों भिन्न पड़ते हैं। **प्रज्ञा छैनी से छेदते....** यह ज्ञान की धारा, उसे आत्मा की ओर झुकाने से राग से भगवान आत्मा भिन्न पड़ जाता है। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया?

दोनों पृथक् हो जाये हैं। आचार्य ने तो वहाँ टीका में ऐसा कहा है न, भाई! **ऐसा हम जानते हैं।** आहाहा! जाति की बात है न?

हमारा भगवान आत्मा ज्ञान से भिन्न पड़कर अर्थात् राग से ज्ञान की दशा भिन्न करके। ज्ञान से भिन्न पड़ता है न? राग से (-राग द्वारा) कहीं भिन्न (नहीं पड़ता)। ज्ञान की पर्याय प्रज्ञाछैनी द्वारा। जैसे एक लोहे में छैनी मारने से दो टुकड़े हो जाते हैं, वैसे भगवान आत्मा अन्दर की ज्ञान की पर्याय, उसे अन्तर में झुकाने से राग और भगवान दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। आहाहा! यह प्रज्ञाछैनी से छेदे जाते हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है। समझ में आया? **समयसार गुजराती आवृत्ति २९४ गाथा।** है न?

अतः आत्मा, परमार्थ से परभावों से, अर्थात् शरीरादि बाह्यपदार्थों से तथा राग-द्वेषादि अन्तरङ्ग परिणामों से विविक्त है- पाठ में आया था न, भाई? विविक्त शब्द है। पाठ में है। चौथा पद। '**विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये**' विविक्त—भिन्न भगवान आत्मा अन्दर है। वह राग की क्रिया और शरीर और कर्म से भगवान अन्दर ज्ञानलक्षण भिन्न है। प्रज्ञाछैनी से उसे पृथक् किया जा सकता है। आहाहा! समझ में आया? यह प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की यह क्रिया। आहाहा! विविक्त है न अन्तिम?

बाह्यपदार्थों से तथा राग-द्वेषादि अन्तरङ्ग परिणामों से विविक्त है- बाह्य पदार्थ अर्थात् शरीर, कर्म, वाणी। यह बाह्य की चीज़ स्त्री-पुत्र-परिवार, वह तो कहीं दूर रह गये। उसमें कहीं है नहीं। बाह्य पदार्थों से भिन्न है और अन्तरंग जो परिणाम हों, उसकी पर्याय में, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह शुभ और अशुभराग से भी प्रभु तो अन्दर भिन्न है। समझ में आया? यह पहले आगम से बात की। फिर युक्ति से की। पहले आगम से की थी न? '**मैं एक शुद्ध सदा...**' फिर यह युक्ति और अनुमान से की, अब अनुभव से बात करते हैं।

आगम और युक्ति द्वारा आत्मा का शुद्धस्वरूप जानकर, अपने त्रिकाल शुद्धात्मा के सन्मुख होने से.... भगवान शुद्ध चैतन्यघन नित्यानन्द प्रभु है, उसे आगम द्वारा जाना और युक्ति द्वारा जाना। अब उसे **शुद्धस्वरूप जानकर, अपने त्रिकाल शुद्धात्मा के सन्मुख होने से....** जो वस्तु है त्रिकाल आनन्द और ज्ञानस्वरूपी भगवान, उसके सन्मुख

होने पर, दिशा पलटने से... परसन्मुख जो ज्ञान की दशा है, वह मिथ्यादशा है.... आहाहा! उसे त्रिकाली चैतन्य के स्वभाव का सत्कार, आदर, सन्मुख होने पर, उसकी अस्ति का आदर होता है। समझ में आया? और राग, दया-दान के विकल्प का आदर करने से भगवान त्रिकाली आनन्दकन्द का अनादर होता है। आहाहा! समझ में आया? अभी यहाँ तो सम्यग्दर्शन की बात है, हों! आहाहा! चारित्र तो उसमें फिर बहुत चीज़ है अन्दर स्थिरता, आनन्द की दशा वह तो। ... आहाहा!

अपने त्रिकाल शुद्धात्मा के सन्मुख होने से.... सत् स्वरूप ऐसा जो ध्रुव भगवान आत्मा, उसके सन्मुख होने पर। सत् मुख। सत् के ऊपर दृष्टि पड़ने से। आहाहा! **आचार्य को जो शुद्धात्मा का अनुभव हुआ है, उस अनुभव से वे विविक्त आत्मा का स्वरूप बतलाना चाहते हैं।** तीन बात हुई। आगम से, अनुमान और युक्ति से तथा अनुभव से। चार बात रखी है न भाई पाँचवीं गाथा में, समयसार में। यह तीन रखी। पर का युक्ति से निषेध करके, यह चौथा बोल ले लेना। परन्तु इस अस्ति में यह आ जाता है। समझ में आया?

आचार्य कहते हैं कि आगम से अर्थात् मैंने मेरे स्वरूप को आगम के ज्ञान से जाना। अनुमान और युक्ति से भी लक्षण के भेद से जाना और अब यह अनुभव से जाना। आहाहा! यह राग और पुण्य की क्रिया का विकल्प राग, उससे विमुख होकर और त्रिकाली भगवान शुद्ध चैतन्यघन के सन्मुख होकर-अनुभव करके मैंने आत्मा को जाना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उस अनुभव से वे विविक्त.... शब्द है न अन्दर चौथा? यह।

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

यह अब बाद में आयेगा। उसे मैं कहूँगा। समझ में आया? किसे अब मैं कहूँगा? ऐसा कहते हैं।

आचार्य आत्मा का स्वरूप किसे बतलाना चाहते हैं? जो माल लेने का इच्छुक है और माल लेने आया है, उसे वह व्यापारी माल देते हैं। घर में जाया जाता है? घर में

देने जाया जाता है? यह पोटला बाँधकर घर में देने जाये, उसकी कुछ कीमत नहीं होती। घर में जाते हैं न कितने ही यह फेरीवाले अधमण पोटला लेकर कठियाणी के घर में जाते हैं, गरासिया के घर में जाते हैं। अब इस भाव देना है, ऐसा करके बाहर निकले तब वापस आओ वापस। वहाँ जाये उसे फेरे। यहाँ तो दुकान पर बैठे हों। जो माल लेने आया हो और चाहिए हो तो यह माल है, बापू! उसे रुचे तो माल लेकर जाये तो वह जाये और आवे। यह तो बैठा है। भाई! यह माल है, इस भाव है और कहीं एक ही भाव होता है।

हमारे भरूच में एक पारसी की दुकान थी। यह तो उस दिन की बात है, हों! ६५ वर्ष पहले की। पारसी की दुकान में एक ही भाव। कोई भी लड़का जाओ या सेठिया जाओ। यह तो मैंने उन्हें देखा है। पारसी की एक दुकान (थी)। टोपी उस प्रकार की, लुंगियाँ उस प्रकार की, बहुत प्रकार की चीज़ें। गोदाम के गोदाम भरे हुए। भरूच माल लेने जाते थे जब वहाँ? पालेज दुकान थी न। पालेज में। वहाँ से माल लेने जाते थे। आठ कोस होता है भरूच। हम जाते तो ऐसा पारसी भी.... एक बार टोपी चाहिए थी, टोपी ओढ़ते थे न। टोपी का क्या भाव है? कि यह भाव है। दुकान में कहा, वहाँ कहा इसमें कुछ कम (नहीं होगा?) यहाँ हमारे दूसरा भाव नहीं है। पारसी कहे, हमारे दूसरा भाव नहीं है। बालक आयो, सेठिया आओ, वकील आओ, बेरिस्टर आओ। हमारे तो एक ही भाव है। यहाँ एक भाव से-वीतरागभाव से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा एक भाव है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा आत्मा को मैं किसे कहूँगा? कहते हैं। जो कुछ खास लेने आया है, उसे। आहाहा!

क्या कहते हैं? देखो! **आत्मा के अतीन्द्रियसुख की ही जिसे अभिलाषा है;....** आहाहा! जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों की इच्छा गयी है.... आहाहा! जिसे आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, उसकी जिसे स्पृहा, इच्छा, लगनी, भावना यह है, उसे मैं कहूँगा। आहाहा! राग के रसियाओं को यह बात नहीं जँचती। विषय शब्द से राग का प्रेम है जिसे, उसे यह बात नहीं जँचती, उसे मैं नहीं कहूँगा। आहाहा! समझ में आया? यह उनकी शर्त है। मेरी शर्त में तो मैंने कहा कि आगम से, अनुमान से, अनुभव से मैंने जाना। अब यह मैं बतलाना चाहता हूँ, वह किसे? **आत्मा के अतीन्द्रियसुख की ही**

अभिलाषा है;.... उसे। आहाहा! यह उनकी शर्त है-सन्तों की यह शर्त है। समझ में आया? समाधि है न? समाधितन्त्र है न? आहाहा! गजब भाई!

मुमुक्षु : माल भी अनमोल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनमोल है, भाई!

बापू! कहते हैं, भाई! मैं समाधि—आत्मा की शान्ति जो आत्मा में भरी पड़ी है, शान्ति का सागर प्रभु है, अतीन्द्रिय आनन्द का वह समुद्र है, वह मैं मेरे अनुभव से किसे कहना चाहता हूँ? आहाहा! जिसे अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की स्पृहा है, दूसरी कोई स्पृहा नहीं। आहाहा! यह तो कुछ सुनूँगा तो कुछ पुण्य बँधेगा और पुण्य बन्धन से कुछ स्वर्ग और पैसे मिलेंगे। यह मांगलिक सुने न तो व्यापार में लक्ष्मी-बक्ष्मी पैसा मिले। ... क्या है? एक दुकान खोलनी है दशहरा में। तो क्या है? दुकान ठीक से चले। यह तो राग का अभिलाषी और जड़ का कामी है। ऐई!

मुमुक्षु : ऐसों के लिये....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा के लिये यह शास्त्र नहीं है। आहाहा! वे तो भटकते राम जीव, जिन्हें भटकना है, उनके लिये यह नहीं है। आहाहा!

जिसे आनन्द की स्पृहा है, भले उसने देखा न हो आनन्द... समझ में आया? परन्तु यह विषय की सुख की मिठास से-जहर है उससे-कोई अलग चीज़ है। विषय के सुख यह अरबोंपति, करोड़ोंपति और इन्द्राणियाँ इन्द्र की करोड़ों इन्द्राणियाँ। जिन्हें ऐसा अनाज नहीं, उन्हें तो कण्ठ में से अमृत (झरे), ऐसा तो उनका आहार। ऐसी इन्द्राणियों के भोग भी जिसे जहर जैसे लगते हों। आहाहा! समझ में आया? जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की स्पृहा हो। आहाहा! यह श्रोता के साथ यह शर्त यह। दुनिया प्रसन्न हो, न हो, उसके साथ हमारे कुछ सम्बन्ध नहीं है। तेरे अतीन्द्रिय आनन्द में से तुझे प्रसन्नता हो तो यह बात हम तुझे कहेंगे। कहो, जेठालालभाई! आहाहा! गजब बात करते हैं या नहीं?

हमारा हेतु तो, अतीन्द्रिय सुख प्राप्त करे यह प्राणी, ऐसे हेतु से तो कथन है, कहते हैं। अब इस हेतु का कथन लागू किसे पड़े? आहाहा! दुनिया की अभिलाषा मान की, पूजा की, यह सब उठ जाये जिसे। मेरा भगवान तीन लोक का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द

से भरपूर मैं हूँ। उसे मुझे प्रगट करने की भावना है। आहाहा! राग प्रगट करने की, पुण्य प्रगट करने की भावना (जिसे है), उस जीव के लिये यह बात नहीं है। आहाहा! भाषा देखो न! वीतरागरूप से अनुभव किया और वीतरागता की अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे स्पृहा है, उसके लिये यह समाधितन्त्र का उपदेश है। आहाहा! समझ में आया?

श्रीमद् में आता है न, 'काम एक आत्मार्थ का, दूसरा नहीं मन रोग।' दूसरा रोग नहीं। आहाहा! यहाँ तो गुप्तरूप से कितने ही पत्र आते हैं गुप्तरूप से, हों! महाराज! आपके पास तो करोड़पति आते हैं। उन्हें कुछ कहो तो हम रास्ते चढ़ें। देखो! यहाँ पैसा दे। गुप्तरूप से ऐसे पत्र आते हैं। अरे! यह दुकान भूला। वह दुकान यह नहीं है। यह हलवाई की दुकान में अफीम नहीं मिलता। वहाँ मिलता होगा अफीम? उसकी दुकान अलग होती है। समझ में आया? अभी ही एक पत्र आया था, नहीं? परसों पढ़ा नहीं? महाराज! आपके जो भक्त हैं, वे तो बहुत पैसेवाले हैं, सुखी हैं, अढणक है। ऐसा लिखा था, हों! परन्तु मुझे अढणक हो मुझे, हम दुःखी हैं। ऐई! पढ़ा या नहीं? पत्र, नहीं? ....अढणक मिले। हमारे धन्धा चलता नहीं, गाँव में रह गये, हमारे परिवारी बाहर गये तो वे तो सब पैसेवाले हो गये। आहाहा! भगवान! तू भूला बापू! पत्र लिखने में। परन्तु कितने ही एकान्त में आते हैं। बेचारे बहुत दुःखी हों और यह वापस दुष्काल। दुकान चले नहीं, लोग सात-आठ घर में (हों), यह सौ-डेढ़ सौ-दो सो मिले महीने में, खर्च पूरा पड़े नहीं। हैरान-हैरान हो गये हैं। अरे! बापू! तेरी श्रद्धा से तू हैरान हो गया है। इस प्रतिकूलता से नहीं। आहाहा!

आनन्द का धाम परमात्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूप आत्मा का। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' यह सिद्ध भगवान स्वरूप ही चैतन्य भगवान विराजता है। उसका एन्लार्ज होकर पर्याय में सिद्धपना आता है। वह अन्दर है, वह आता है। समझ में आया? उसके सामने देखना नहीं, उसकी भावना नहीं और शास्त्र सुनकर कुछ पैसा मिले, इज्जत मिले, सुख मिले, लड़के अच्छी जगह विवाह हो, लड़कियों का अच्छी जगह विवाह हो। अरे! बापू! तू कहाँ आया भाई?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहा न, बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९९२ के वर्ष की। चार सौ का वेतनवाला एक पारसी था, यहाँ घोळा जंक्शन। चार सौ का वेतन था ९२ के वर्ष में। मैं वहाँ बैठा था। उस मकान में आये थे न, हीराभाई के मकान में। अकेला बैठा, वहाँ आया था। पारसी था। ४०-४५ वर्ष की उम्र। ऐसे हाथ निकाला। क्या है भाई? महाराज! हाथ देखो न। अरे! भाई! यह वह दुकान नहीं है। वह दु:खी होगा, कुछ दु:खी होगा। फिर महीने, दो महीने में बन्दूक (गोली) खाकर मर गया। सुना था। यहाँ सुना था, यहाँ घोळा में था पारसी। कुछ होगा। जगत की बहुत प्रकार की भ्रमणा। हाथ देखो। क्या है, बापू? कि यह मुझे कब पैसे मिलेंगे? भगवान! भूला बापू! यह वह दुकान नहीं है, कहा। यहाँ तो आत्मा की दुकान है, बापू! आत्मा देखना, जानना, वह कैसे मिले और धर्म कैसे (हो)—सुखी हुआ जाये, वह मार्ग है, बापू! हमारे पास दूसरा कुछ है नहीं। हमारी महिमा तुम ऐसे गिनते हो, बड़े महाराज इसलिए उसे आशीर्वाद दे तो अच्छा हो, ऐसा हमारे पास कुछ है नहीं। चन्दुभाई! आशीर्वाद दे आशीर्वाद।

अभी कल एक ब्राह्मण आया था। पालडी। वह पालडी नहीं? तीन कोस दूर है। यह भीखाभाई रवारी वहाँ के हैं। हम निकले नहीं थे तब? (संवत्) २०१३ के वर्ष। पालडी निकले थे। आये थे, नहीं? यहाँ से सिहोर जाते हुए तीन कोस है। पालडी का आया था। महाराज! हाथ रखो। मैं वहाँ मुम्बई तो हमेशा बात सुनने आता हूँ। परन्तु अब तो हाथ रखो, हों! अरे! जवान लड़का था। उसने बेचारे ने सवा पाँच रुपये रखे। जेब में से निकालकर (रखे)। यहाँ तो आत्मा की बातें हैं, भाई! हाथ जड़ है उसमें क्या हो? आहाहा! अरे! ऐसी जिसे संसार की झंखना है, (उसके लिये यह बात नहीं है)। आहाहा!

यहाँ तो भव का अभाव होकर आत्मा की शान्ति कैसे मिले, यह बात है, कहते हैं। जिसे भव के अभाव की भावना है.... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की स्पृहा का अर्थ क्या हुआ? अतीन्द्रिय आनन्द मुझे तो चाहिए है। आहाहा! वह कहाँ से मिलेगा? ऐसा पूछे, तब तो उसे कहे, बापू! अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर में है। यह तुझे खबर नहीं।

आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे इच्छा है, उसे अतीन्द्रिय आनन्द की ओर ढलने के लिये यह हमारा उपदेश है, कहते हैं। आहाहा! दुनिया के भाव से ऐसा लगे यह तो मानो यह क्या होगी ऐसी जाति पूरी? यह वह जैन का धर्म होगा? जैनधर्म में छह काय की दया पालना, छह काय के पियर.... नहीं लिखाते? ऐई! भोगीभाई! संवत्सरी पूरी हो तब नहीं लिखते? पत्र में एक-दूसरे को लिखते हैं। छह काय के पियर, छह काय के ग्वाल, छह काय के रक्षक। सब खोटी बातें। आहाहा! परजीव की रक्षा कौन करे? पर की दया कौन पाले? आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

तेरी दया तू पाल सकता है, तेरी हिंसा—तू नहीं—ऐसा तू कर सकता है। मैं एक नहीं, ऐसी (हिंसा) कर सकता है ज्ञान में, और मैं एक पूर्ण आनन्द का नाथ पूर्ण हूँ, ऐसे तू तेरी रक्षा कर सकता है। ऐसी जीवित ज्योति भगवान विराजे, उसका तू नकार करके, मैं रागवाला और पुण्यवाला हूँ, वह जीवति ज्योति का तूने नकार करके हिंसा की है। तेरी तूने हिंसा की है। आहाहा! ऐसे चैतन्य ज्योति को जानने के लिये यदि तुझे प्रयत्न हो तो वह बात मैं तुझे कहूँगा। कहो, भोगीभाई! ऐसी यह बात है।

अतीन्द्रियसुख की ही.... वापस ऐसा है न? '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' ऐसा है न? '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' मात्र आत्मा के आनन्द की। आहाहा! यह संसार के जो सुख हैं, वे तो दुःख हैं, जहर हैं। आहाहा! इस जहर की पिपासा जिसे छूटी है और आत्मा के अमृतरस को प्रगट करने की जिसे भावना है। आहाहा! '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' कैवल्यपद विषयक अथवा निर्मल अतीन्द्रिय सुख की भावनावाले। ऐसा। अर्थात् कैवल्यपद कहो या मोक्षपद कहो। आत्मा की पूर्ण मोक्षदशा। लोग्गस में आता है न? 'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।' हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धपद चाहिए है, दिखलाओ। यह तो एक प्रार्थना है। दे कौन? 'सिद्धि सिद्धिं मम दिसंतु।' मुझे दिखलाओ। इसका अर्थ केवलज्ञान हो, तब देखे उसे-स्वयं को। आहाहा! पूर्ण। समझ में आया? आहाहा! ऐसे सुख की जिसे इच्छा है। अतीन्द्रिय सुख की। आत्मा के अतीन्द्रिय सुख की जिसे स्पृहा है।

इन्द्रिय विषयसुख की जिसे अभिलाषा नहीं है,.... स्पृहा अर्थात् इच्छा, जिज्ञासा, अभिलाषा, भावना यह सब अर्थ में स्पृहा कहा जाता है। **वैसे (जिज्ञासु) भव्यजीवों**

को ही.... आहाहा! देखो न! **वैसे (जिज्ञासु) भव्यजीवों को ही आचार्य, विविक्त आत्मा का....** भिन्न—राग और परपदार्थ से भिन्न भगवान आत्मा का **(शुद्धात्मा का) स्वरूप कहना चाहते हैं।** आहाहा! मिलाया है भारी, हों! छोटाभाई ने बहुत अच्छा लिखा है। छोटालाल गुलाबचन्द दिगम्बर अहमदाबाद। कुछ पढ़े हुए थे, नहीं? कुछ बड़ी पदवी थी। ग्रेज्युएट थे कुछ। अन्दर होगा कुछ। है? यहाँ आते थे न? अन्तिम बीमारी में मैं वहाँ गया था अहमदाबाद। वहाँ रहते थे, वहाँ गये थे। बोर्डिंग में। वह डेलो था। गुजर गये। बहुत अच्छा लिखा है। यह समाधितन्त्र यहाँ पढ़ा था जब, तब उसने सुना था। वह फिर भाई ने डाला, नहीं? शीतलप्रसाद का। तब यह कहाँ थे, नहीं? शीतलप्रसाद का पढ़ा था। तब लिखा था। तब मैं उपस्थित था। हमने पढ़ा है, इसलिए हमें समझ में आया, वह सब मैंने लिखा है।

इस प्रकार श्री पूज्यपाद आचार्य.... पूज्यपाद मुनि दिगम्बर सन्त आनन्द में केली करनेवाले थे। सन्त उन्हें कहते हैं। यह पंच महाव्रत पाले और अमुक करे, वह साधु नहीं, बापू! यह तुझे खबर नहीं। जो आत्मा के आनन्द के स्वरूप का साधन करे, वह साधु। आहाहा! वह यह मुनि आनन्द के साधन में थे, ऐसे पूज्यपाद आचार्य ने.... आहाहा! ऐसे सन्त कहाँ हैं? सन्त किसे कहना, इसकी भी खबर कहाँ है जगत को? आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना के द्रव्यलिंगी सब बाहर के, वे सब भटकने के मार्ग हैं। समझ में आया?

आगम, युक्ति, और अनुभव से आत्मा के शुद्धस्वरूप को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं। लो!

श्लोक - ४

कतिभेदः पुनरात्मा भवति ? येन विविक्तमात्मानमिति विशेष उच्यते। तत्र कुतः कस्योपादानं कस्य वा त्यागः कर्तव्य इत्याशंक्याह :-

[१]बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्॥ ४॥

बहिर्बहिरात्मा, अन्तः अन्तरात्मा, परश्च परमात्मा इति त्रिधा आत्मा त्रिप्रकार आत्मा। क्व ? सर्वदेहिषु सकलप्राणिषु। ननु अभव्येषु बहिरात्मन एव सम्भवात् कथं सर्वदेहिषु त्रिधात्मा स्यात् ? इत्यप्यनुपपन्नं तत्रापि द्रव्यरूपतया त्रिधात्मसद्भावोप-पत्तेः कथं पुनस्तत्र पंचज्ञानावरणान्युपपद्यन्ते ? केवलज्ञानाद्याविर्भावसामग्री हि तत्र कदापि न भविष्यतीत्यभव्यत्वं, न पुनः तद्योगद्रव्यस्याभावादिति। भव्यराश्यपेक्षया वा सर्वदेहिग्रहणं। आसन्नदूरदूरतरभव्येषु अभव्यसमानभव्येषु च सर्वेषु त्रिधाऽऽत्मा विद्यत इति। तर्हि सर्वज्ञे परमात्मन एव सद्भावाद् बहिरन्त-रात्मनोरभावात्त्रिधात्मनो विरोध इत्यप्ययुक्तम्। भूतपूर्वप्रज्ञापन नयापेक्षया तत्र तद्विरोधासिद्धेः घृतघटवत्। यो हि सर्वज्ञावस्थायां परमात्मा-सम्पन्नः स पूर्वं बहिरात्मा अन्तरात्मा चासीदिति। घृतघटवदन्तरात्मनोऽपि बहिरात्मत्वं परमात्मत्वं च भूतभाविप्रज्ञापननयापेक्षया द्रष्टव्यम्। तत्र कृतः कस्योपादानं कस्य वा त्यागः कर्तव्य इत्याह उपेयादिति। तत्र तेषु त्रिधात्मसु मध्ये उपेयात् स्वीकुर्यात् परमं परमात्मानं। कस्मात् ? मध्योपायात् मध्योऽन्तरात्मा स एवोपायस्तस्मात् तथा बहिः बहिरात्मानं मध्योपायादेव त्यजेत्॥४॥

ऐसी आशङ्का करके कहते हैं —

त्रिविधिरूप सब आतमा, बहिरात्मा पद छेद।
अन्तरात्मा होयकर, परमातम पद वेद॥ ४॥

अन्वयार्थ - (सर्वदेहिषु) सर्व प्राणियों में (बहिः) बहिरात्मा, (अन्तः)

---

१. तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु देहीणं।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतीवाएण चयहि बहिरप्पा॥
अर्थात्, वह आत्मा प्राणियों के तीन प्रकार का है; अन्तरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा। अन्तरात्मा के उपाय द्वारा बहिरात्मपन को छोड़कर परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।
(- श्री मोक्षप्राभृत, कुन्दकुन्दः)

अन्तरात्मा (च परः) और परमात्मा, (इति) इस तरह (त्रिधा) तीन प्रकार का (आत्मा) आत्मा (अस्ति) है। (तंत्र) आत्मा के उन तीन भेदों में से (मध्योपायात्) अन्तरात्मा के उपाय द्वारा, (परमं) परमात्मा को (उपेयात्) अङ्गीकार करना चाहिए और (बहिः) बहिरात्मा को (त्यजेत्) छोड़ना चाहिए।

टीका - बहिः, अर्थात् बहिरात्मा; अंतः, अर्थात् अन्तरात्मा; और परः, अर्थात् परमात्मा—इस प्रकार त्रिधा, अर्थात् तीन प्रकार का आत्मा है। ये (प्रकार-भेद) किसमें हैं? सर्व देहियों में-समस्त प्राणियों में।

(शङ्का -) अभव्यों में बहिरात्मपना ही सम्भव होने से, सर्व देहियों (प्राणियों) में तीन प्रकार का आत्मा है—ऐसा किस प्रकार हो सकता है?

(समाधान -) ऐसा कहना भी योग्य नहीं, क्योंकि वहाँ भी (अभव्य में भी) द्रव्यरूपपने से, तीनों प्रकार के आत्मा का सद्भाव घटित होता है।

(आशङ्का -) वहाँ पाँच ज्ञानावरण (कर्मों) की उपपत्ति किस प्रकार घट सकती है?

(समाधान -) केवलज्ञानादि के प्रगट होनेरूप सामग्री ही उसके होनी नहीं है, इस कारण उसमें अभव्यपना है; न कि तद्योग्य द्रव्य के अभाव से (अभव्यपना है) अथवा भव्यराशि की अपेक्षा से सर्व देहियों का ग्रहण समझना। आसन्न भव्य, दूर भव्य, दूरतर भव्य तथा अभव्य जैसे भव्यों में-सर्व में तीन प्रकार का आत्मा है।

(शङ्का -) तो सर्वज्ञ में परमात्मा का ही सद्भाव होने से और (उनमें) बहिरात्मा तथा अन्तरात्मा का असद्भाव होने से, उसमें (सिद्ध में) तीन प्रकार के आत्मा का विरोध आयेगा?

(समाधान -) ऐसा कहना भी योग्य नहीं है क्योंकि भूतपूर्व * प्रज्ञापननय की अपेक्षा से, उनमें घृतघटवत् उस विरोध की असिद्धि है (उसमें विरोध नहीं आता)। जो सर्वज्ञ अवस्था में परमात्मा हुए, वे भी पूर्व में बहिरात्मा तथा अन्तरात्मा थे।

---

* नोट - भूत-भावी प्रज्ञापननय, जो भूतकाल की पर्याय को वर्तमानवत् कहे, उस ज्ञान (अथवा वचन) को भूतनैगमनय अथवा भूतपूर्व प्रज्ञापननय कहते हैं। जो भविष्यकाल की पर्याय को वर्तमानवत् कहे, उस ज्ञान (अथवा वचन) को भावीनैगमनय अथवा भावीप्रज्ञापन नय कहते हैं। (-श्री तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय १, सूत्र ३३)

घृतघट की तरह भूत-भावी प्रज्ञापननय की अपेक्षा से अन्तरात्मा को भी बहिरात्मपना और परमात्मपना समझना।

इन तीनों में से किसका, किस द्वारा ग्रहण करना या किसका त्याग करना? वह कहते हैं। ग्रहण करना, अर्थात् उसमें उन तीन प्रकार के आत्माओं में से, परमात्मपने का स्वीकार (ग्रहण) करना। किस प्रकार? मध्य उपाय से मध्य, अर्थात् अन्तरात्मा, वही उपाय है; उस द्वारा (परमात्मा का ग्रहण करना) तथा मध्य (अन्तरात्मारूप) उपाय से ही, बहिरात्मपने का त्याग करना।

भावार्थ :- सर्व जीवों में बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा — ऐसी तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। उनमें बहिरात्म अवस्था छोड़नेयोग्य है; अन्तरात्म अवस्था, परमात्मपद की प्राप्ति का साधन है; अतः वह प्रगट करने योग्य है और परमात्म अवस्था जो आत्मा की स्वाभाविक वीतरागी अवस्था है, वह साध्य है; अतः वह परम उपादेय (प्रगट करने योग्य) है।

प्रश्न - सर्व प्राणियों में आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं — ऐसा श्लोक में कहा है, किन्तु अभव्य को तो एक बहिरात्म अवस्था ही सम्भव है, तो सर्व प्राणियों के आत्मा की तीन अवस्थाएँ कैसे सम्भव हैं?

उत्तर - जो जीव, अज्ञानी बहिरात्मा है, उसमें भी अन्तरात्मा और परमात्मा होने की शक्ति है। भव्य और अभव्यजीवों में भी केवलज्ञानादिरूप परमात्मशक्ति है। यदि उनमें वह शक्ति न हो तो उसके प्रगट न होने में निमित्तरूप केवलज्ञानावरणादि कर्म भी नहीं होना चाहिए, किन्तु बहिरात्मा को (अभव्य को भी) केवलज्ञानावरणादि कर्म तो है; इससे स्पष्ट है कि बहिरात्मा में (भव्य या अभव्य में) केवलज्ञानादि शक्तिपने हैं। अभव्य के उस शक्ति को प्रगट करने जितनी योग्यता नहीं है।

अनादि से सभी जीवों में केवलज्ञानादिरूप परमस्वभाव शक्तिरूप से है। उस स्वभाव का श्रद्धा-ज्ञान करके, उसमें लीन हो तो वह केवलज्ञानादि शक्तियाँ प्रगट हो जाएँ और केवलज्ञानावरणादि कर्म स्वयं छूट जाएँ।

श्रीमद्राजचन्द्रजी ने कहा है :—

'सर्व जीव हैं सिद्ध सम, जो समझे सो होय'

समस्त जीव, शक्तिरूप से परिपूर्ण सिद्धभगवान जैसे हैं, किन्तु जो अपनी

त्रिकाली शुद्ध चैतन्यस्वरूप स्वभावशक्ति को सम्यक् प्रकार से समझे, उसकी प्रतीति करे और उसमें स्थिरता करे, वे परमात्मदशा प्रगट कर सकते हैं।

वर्तमान में जो धर्मी जीव, अन्तरात्मा है, उसे पूर्व अज्ञानदशा में बहिरात्मपना था और अब अल्पकाल में परमात्मपना प्रगट होगा।

परमात्मपद को प्राप्त हुए श्री अरहन्त और सिद्धभगवान को भी पूर्व में बहिरात्मदशा थी, उन्होंने जिस समय अपनी स्वाभाविकशक्ति की प्रतीति की और स्वभावसन्मुख हुए, उसी समय उनके बहिरात्मपने का अभाव हो गया और अन्तरात्मदशा प्रगट हुई, तत्पश्चात् उग्रपुरुषार्थ करके स्वभाव में लीन होकर परमात्मा हुए।

इस प्रकार अपेक्षा से प्रत्येक जीव में तीन प्रकार घटित होते हैं—ऐसा समझना।

विशेष स्पष्टीकरण -

बहिरात्मा - जो बाह्य शरीरादि, विभावभाव तथा अपूर्ण दशाओं में आत्मबुद्धि करता है, अर्थात् इनके साथ एकत्वबुद्धि करता है, वह बहिरात्मा है। वह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को भूलकर, बाहर में काया और कषायों में निजपना मानता है। उसको भावकर्म और द्रव्यकर्म के साथ एकत्वबुद्धि है; उन्हीं से अपने को लाभ-हानि मानता है। वह मिथ्यादृष्टि जीव, अनादि काल से संसार परिभ्रमण के दुःखों से दुःखी होता है।

अन्तरात्मा - जिसको शरीरादि से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान है, वह अन्तरात्मा है। उसे स्व-पर का भेदविज्ञान है। उसे ऐसा विवेक वर्तता है कि—'मैं ज्ञान-दर्शनरूप हूँ, एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है; अन्य सब संयोग लक्षणरूप, अर्थात् व्यवहाररूप जो भाव हैं, वे सब मुझसे भिन्न हैं, मुझसे बाह्य हैं।'—ऐसा सम्यग्दृष्टि आत्मा, मोक्षमार्ग में स्थित है।

परमात्मा - जिनने अनन्त ज्ञान-दर्शनादिरूप चैतन्यशक्तियों का पूर्णरूपेण विकास करके, सर्वज्ञपद प्राप्त किया है, वे परमात्मा हैं॥४॥

श्लोक - ४ पर प्रवचन

आत्मा के पुनः कितने भेद हैं। अब आत्मा बतलाना है न? तो आत्मा के भेद कितने? किस प्रकार के? **जिससे 'विविक्त आत्मा'—ऐसा विशेष कहा गया है?** क्या कहा? विविक्त, ऐसा कहा न? राग से, शरीर से और कर्म से भिन्न ऐसे आत्मा को मैं कहूँगा। तब उस आत्मा के प्रकार कितने हैं कि तुम विविक्त आत्मा कहते हो? समझ में आया? **आत्मा के और कितने भेद हैं, जिससे 'विविक्त आत्मा' — ऐसा विशेष कहा गया है?** मैं एक आत्मा को कहूँगा। कैसे आत्मा को? विविक्त। अर्थात्? कि पुण्य-पाप की क्रिया के राग से भिन्न और देह और शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न। शरीर—नोकर्म और कर्म से भिन्न। नोकर्म, कर्म और भावकर्म। यह राग-द्वेष अर्थात् भावकर्म। तीनों से भिन्न है, उस आत्मा को मैं कहूँगा। समझ में आया? तब कहते हैं, उसके भेद कितने हैं कि तुमने ऐसा कहा है?

और आत्मा के उन भेदों में किसके द्वारा किसका ग्रहण और किसका त्याग करना योग्य है? आहाहा! **ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—** है न पाठ? **'तत्र कुतः कस्योपादान'** किसका ग्रहण करना? और किसका त्याग करना? **'इत्याशंक्याह'** ऐसी जानने की इच्छा है। आशंका अर्थात् तुम्हारा कहा हुआ मिथ्या है, ऐसा नहीं, परन्तु मुझे समझने के लिये आशंका है कि तुम विविक्त आत्मा किसे कहते हो? अन्तरात्मा के कितने प्रकार हैं कि उसमें विविक्त आत्मा को आप बतलाना चाहते हो?

चौथी गाथा। मोक्षपाहुड़ में भी नीचे है।

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्॥ ४॥

लो! तीनों आ गये संक्षेप में। इसका अन्वयार्थ करो पहले। अन्वयार्थ लो न।

अन्वयार्थ - सर्व प्राणियों में.... जगत के जो अनन्त जीव हैं; निगोद के अनन्त जीव आलू, शकरकन्द, कन्दमूल। आहाहा! एक कणी में असंख्य शरीर और यह असंख्य शरीर में एक-एक शरीर में अनन्त-अनन्त आत्मा। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं है नहीं। समझ में आया? कन्दमूल का एक टुकड़ा, आलू, शकरकन्द

का राई जितना टुकड़ा (लो) तो उस टुकड़े में असंख्य तो औदारिक शरीर हैं, और एक शरीर में, अभी तक जो सिद्ध हुए अनन्त, उनसे अनन्तगुणे एक शरीर में जीव हैं। आहाहा! ऐसी वस्तु अस्ति स्वरूप है, हों! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने देखा और यह वस्तुस्थिति है।

ऐसे **सर्व प्राणियों में.... 'सर्वदेहिषु'** शब्द है न? **बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा, इस तरह तीन प्रकार का आत्मा है।** सब आत्मा में तीन प्रकार से है। आहाहा! बहिरात्मा भी तीन प्रकार से है, अन्तरात्मा भी तीन प्रकार से है और परमात्मा भी तीन प्रकार से है। आहाहा! जितने जीव की राशि है, वे सब अनन्त बहिरात्मा हैं, असंख्य अन्तरात्मा हैं। अनन्त परमात्मा हैं। और प्रत्येक जीव को यह तीनों लागू पड़ते हैं, कहते हैं। बहिरात्मपना, अन्तरात्मापना और परमात्मापना। ओहोहो! आचार्य की शैली! ग्रन्थ रचते हैं.... भिन्न-भिन्न हों, वैसे स्पष्ट किया है।

सर्व प्राणियों में.... सर्व प्राणियों में कोई प्राणी बाकी रहा? निगोद के जीव, प्रत्येक वनस्पति, त्रस, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। आता है या नहीं? .... नहीं आता? एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया.... यह तो पहाड़ा बोल जाये। परन्तु क्या है? ऐई! भोगीभाई! तस्स मिच्छामि दुक्कडम। जीविया वहरविया तस्स मिच्छामी.... क्या परन्तु जीव और किसे जीव (कहना)? आहाहा! समझ में आया? वह तत्सुतरी बोल जाये.... अप्पाणं वोसरे। आत्मा को वोसराना। परन्तु कौन सा आत्मा? किसे वोसराना? किसे रखना? किसे प्रगट करना?

मुमुक्षु : यह विषय चलता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चलता नहीं। यह बात सच्ची है। आहाहा! यह विषय तत्त्व का विषय, वास्तविक स्वरूप, जिसमें से सत्य प्राप्त हो, वह बात ही सब उल्टे रास्ते चढ़ गयी है। आहाहा!

आचार्य महाराज कहते हैं कि सर्व आत्माओ में **बहिरात्मा,...** मिथ्यादृष्टिपना **अन्तरात्मा...** साधकपना, **परमात्मा....** पूर्ण दशा प्राप्त जीव। प्रत्येक आत्मा में तीनों लागू पड़ते हैं, कहते हैं। **इस तरह तीन प्रकार का आत्मा है। उन... 'मध्योपायात्'** मध्य कहा

न ? '**बहिः**' '**अन्त**' अन्त, मध्य। **अन्तरात्मा के उपाय द्वारा,....** आहाहा! पूर्णानन्द स्वरूप के सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता द्वारा **परमात्मा को अङ्गीकार करना चाहिए....** आहाहा! पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु चैतन्य का अस्तित्व है, उसका आश्रय करके, उस उपाय द्वारा **परमात्मा को अङ्गीकार करना चाहिए....** पूर्ण परमात्मदशा प्रगट करना चाहिए। **और बहिरात्मा को छोड़ना चाहिए।** आहाहा! देखो भाषा!

अन्तरात्मा द्वारा.... अन्तरात्मा अर्थात् कि राग और शरीर से भिन्न प्रभु, ऐसी जो अन्तर वस्तु है, ऐसे अन्तरात्मा के अनुभव द्वारा। आहाहा! समझ में आया ? अन्तरात्मा। जो अन्दर में स्वभावरूप वस्तु है। उसके उपाय द्वारा। ऐसा कहा न ? आहाहा! देखो न! भिन्न-भिन्न में वस्तु भिन्न-भिन्न.... आहाहा! अन्तर। मध्य अर्थात् अन्तर। बहिरात्मा, परमात्मा और मध्य में अन्तरात्मा। जो अन्तर वस्तु है, शुद्ध चैतन्य आनन्दघन, राग, विकल्प, शरीर और कर्म बिना की चीज़, उसे पकड़ने से, उसके उपाय द्वारा परमात्मा को प्रगट करना और बहिरात्मा को छोड़ना। वह किस प्रकार है, यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)